

## आत्मकथा : व्यक्ति यथार्थ से सामाजिक यथार्थ की ओर

डॉ. रंजन पाण्डेय

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली  
ए-3, प्रथम तल, ड्रीमलैण्ड अपार्टमेंट,  
बाबा कॉलोनी, बुराड़ी, दिल्ली-110084  
[ranjandu86@gmail.com](mailto:ranjandu86@gmail.com)

**आत्मकथा** एक अद्वितीय आत्म की ऐसी रचना है, जहाँ लेखक मानवीय व्यक्तित्व का सर्जनात्मक आख्यान प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इस सर्जनात्मक आख्यान का आधार मानव व्यक्तित्व है, जिसमें मानवीय जीवन का वैयक्तिक अस्तित्व उसके सामाजिक परिवेश और सांस्कृतिक विकास से गहरे तौर पर सम्बद्ध होता है। ऐसा इसलिए कि व्यक्ति और समाज एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हैं और प्रभावित होते भी हैं। आत्म के अनेक पक्ष समाज के उन विशिष्ट रूपों से जुड़े हुए होते हैं जिनमें एक व्यक्ति अपना जीवनयापन करता है।

आत्मकथा में एक ओर लेखक अपने अतीत के जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करने का प्रयास करता है तो दूसरी ओर वह उस जीवन यथार्थ के द्वारा समाज के यथार्थ की ओर भी इशारा करता है। “सम्पूर्ण भारतीय मनीषा ही व्यक्ति को समाज के विशाल रथ-चक्र की एक कील भर मानती रही। समाज में पहले व्यक्ति की सम्पूर्ण इयत्ता की सार्थकता मात्रा अपने सामाजिक, पारिवारिक परिवेश की रूढ़ियों, परम्पराओं, उसके नियम व्यवहारों के शत-प्रतिशत सविनय स्वीकार से ही प्रमाणित, मान्य रही।”<sup>1</sup> इस प्रकार व्यक्ति अपने जीवन की सच्चाई बताने के क्रम में अपने सामाजिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है। वह समाज की समस्याओं को बड़ी ही कलात्मकता के साथ अपनी आत्मकथा में प्रस्तुत करता है, और कभी-कभी उनके समाधान हेतु अपनी राय प्रस्तुत करता है।

आत्मकथा का लेखक अपने समयानुसार समाज के गैर प्रगतिशील और रूढ़िवादी व्यवस्था, परम्परा आदि का वर्तमान दृष्टिकोण के आधार पर गंभीर विश्लेषण करता है। यह संदर्भ स्त्री और दलित आत्मकथाओं में विशेष तौर पर देखा जा सकता है। हालांकि अन्य आत्मकथाएँ भी सामाजिक कुरीतियों, अर्थ समस्या, स्त्री शिक्षा, पर्दे की प्रथा, बाल विवाह एवं अंधविश्वास जैसी समस्याओं को आलोचकीय दृष्टि से देखती हैं। दहेज प्रथा के संदर्भ में बच्चन ने नकार का भाव आत्मकथा में दिखाया है। बच्चन लिखते हैं कि- “अपने विवाह के सम्बन्ध में जो शर्त मैंने लगाई थी वह यह थी कि मेरी शादी बहुत सादे तरीके से की जाए।।। दहेज न माँगा जाए, जैसा उन दिनों आम-रिवाज था।”<sup>2</sup>

व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों की व्याख्या आत्मकथा में करते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि- "आत्मकथा के माध्यम से लेखक का एक लक्ष्य अगर खुद को जानना है तो खुद को जानने की कोशिश के दौरान ही वह दुनिया को जानता है; क्योंकि खुदी दुनिया को जानने की प्रक्रिया का ही परिणाम है। लेखक का या किसी का भी आत्म व्यक्तिगत होता है और सामाजिक भी। आत्मकथा में आत्म के दोनों रूपों की कथा होती है, इसलिए वह व्यक्तिगत दस्तावेज होते हुए भी सामाजिक रूप से सार्थक होता है।"<sup>3</sup> इस प्रकार आत्मकथा खुद को जानने के दौरान व्यक्ति यथार्थ से सामाजिक यथार्थ की ओर अग्रसर होती है।

आलोचक हमेशा से ही साहित्य को युगीन परिवेश का प्रतिबिम्ब मानते रहे हैं। एक ओर साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब है तो वहीं 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है।' जैसी उक्तियाँ साहित्य की समाज सापेक्षता की ओर इशारा करती हैं। यही कारण है कि साहित्य को उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक संदर्भों के बिना व्याख्यायित करना उसकी अधूरी व्याख्या है। साहित्यकार स्वयं के परिवेश के प्रति संवेदनशील होकर ही साहित्य की सर्जना की ओर उन्मुख होता है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति अपने युगीन परिवेश के मध्य रहने के लिए बाध्य होता है इसलिए साहित्यकार की विशिष्टता उसके युगीन परिवेश की विशिष्टता का परिणाम है। यही कारण है कि आत्मकथा साहित्य में युगीन आंकलन महत्वपूर्ण हो जाता है। युगीन परिस्थितियों का चित्रण व्यक्ति यथार्थ के रास्ते करने के क्रम में आत्मकथाएँ एक ओर विश्वसनीयता की वृद्धि करती हैं तो साथ ही स्वाभाविकता का भी सृजन करती हैं।

आत्मकथा विधा में आत्म के विकास को चिह्नित करने के क्रम में प्रायः दो दृष्टियाँ विद्यमान रहती हैं। एक दृष्टि वह है जो आत्म के आन्तरिक उपादानों पर बल देती है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपने स्वप्नों, दृष्टियों को अपने अतीत के चुनावों और भविष्योन्मुखी विचारों के क्रम में व्याख्यायित करता है, जबकि दूसरी दृष्टि बाह्य यथार्थ को प्राथमिकता देती है। व्यक्ति का आत्म प्रत्यक्षतः परोक्षतः बाह्य जगत से जुड़ा होता है। इसलिए आत्मकथा में अंतः और बाह्य जगत का चित्रण अपेक्षित है। लेकिन यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि व्यक्ति मात्र ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का वर्णन क्रम में अपना जीवन साक्ष्य प्रस्तुत नहीं करना चाहता। अच्छी आत्मकथा वही है जो आत्म और बाह्य दुनिया के बीच संतुलन कुछ इस प्रकार कायम करे ताकि आत्म और समाज में समानुपातिक स्थिरता का निर्वहन हो सके। जहाँ दोनों के सम्बन्धत्व को समझा गया हो तथा एक की कीमत पर दूसरों को अनावश्यक प्रमुखता न दी जाए।

“आत्मकथाकार का उद्देश्य समकालीन इतिहास का विवेचन परीक्षण या अनुसंधान नहीं होता। व्यक्ति-समष्टि संबंधों की व्याख्याएँ 'आत्म' के विकास के प्रदर्शनार्थ ही होती हैं।”<sup>4</sup>

इस प्रकार आत्मकथा का मूल्यांकन केवल सामाजिक, ऐतिहासिक संदर्भों के व्यापकता के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह एकपक्षीय दृष्टि होती है।

स्त्री आत्मकथा और दलित आत्मकथा में व्यक्ति यथार्थ का सामाजिक यथार्थ में रूपान्तरण अपेक्षाकृत आसानी से दृश्य होता है। दरअसल आत्मकथा में एक ओर लेखक की व्यक्तिगत विशेषताएँ होती हैं तो दूसरी ओर सामाजिक गुण-दोष। इन दोनों में लेखक के निर्माण में जिसकी भूमिका अधिक होती है लेखक उसी का बयान अपेक्षाकृत अधिक करता है। स्त्री और दलित आत्मकथाओं में हम यह देख सकते हैं कि स्त्री या दलित लेखक/लेखिका के आत्म का निर्धारण जितना उसकी अन्तःचेतना या अन्तरिक गुणों से हुआ है उससे अधिक सामाजिक स्वरूप से हो रहा है।

सामान्यतः स्त्री आत्मकथाओं के विश्लेषण के समय हमें स्त्री के सामाजिक आधार को आलोचकीय दृष्टि से देखना होगा। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि- “स्त्री आत्मकथाओं पर विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से पहले हमें यह देखना होगा कि लेखिका कौन है, किस वर्ग व वर्ण से आती है, उसका सामाजिक स्तर क्या है व वह किस धर्म व जाति की है?”<sup>5</sup>

रमणिका गुप्ता जिस तरफ संकेत कर रही हैं वह वर्ग, वर्ण, धर्म आदि के आधार पर बनायी गयी वे वर्जनाएँ हैं जो स्त्री को सहनी पड़ती हैं। एक स्त्री अपने लिंगगत आधार पर जो बाधा, उपेक्षा और शोषण को झेलती है, वही बाधा, उपेक्षा व शोषण उसे सामाजिक आधार पर झेलने होते हैं। सामाजिक आधार अलग-अलग होने पर शोषण के स्तर भी भिन्न-भिन्न होते हैं। रमणिका गुप्ता के अनुसार- “विशेषतया सामाजिक परंपराएँ, अनुष्ठान, वर्जनाएँ व रूढ़ियाँ, स्त्री शोषण का जरिया होती हैं और हर समाज में भिन्न-भिन्न भी। इसलिए किसी एक स्त्री के अनुभवों की तुलना, दूसरी स्त्री के अनुभवों से करना संभव नहीं। कुछ अनुभव एक से हो सकते हैं, लेकिन उसका परिणाम और प्रभाव तो उस समाज की चेतना के स्तर निर्भर करता है। आत्मकथा में समाज के सच के साथ-साथ, स्त्रियों का अपना-अपना सच भी होता है।”<sup>6</sup>

कौशल्या बैसंत्री अपनी आत्मकथा में अपनी लिंगगत और जातिगत वर्जनाओं के विषय में लिखती हैं, जो उनके समाज के सच के साथ उनका अपना सच भी है- “अस्पृश्य समाज में पैदा होने से

जातीयता के नाम पर जो मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ीं इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा। मैंने अपने अनुभव खुले मन से लिखे हैं। पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बर्दाश्त नहीं करता। पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा दे।<sup>7</sup> अपने आप को कौशल्या बैसंत्री अन्य महिलाओं से अलग करती हैं क्योंकि वे आप बीती को बयान कर पायीं हैं और साथ ही इस आप बीती को समाज की आँख खोलने के लिए आवश्यक भी मानती हैं। उनके अनुसार- “मेरे जैसे अनुभव और भी महिलाओं को आए होंगे परन्तु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती और जीवन-भर घुटन में जीती हैं। समाज की आँख खोलने के लिए ऐसे अनुभव सामने आने की जरूरत है।”<sup>8</sup>

स्त्री आत्मकथा, पुरुष आत्मकथा से अलग प्रतीत होने लगती है, विशेषतः उन घटकों के कारण जो आत्मकथा के लिए जरूरी होने के बावजूद महिला आत्मकथाकार के लिए निषिद्ध है। आत्म स्वीकार, आत्म-प्रस्तुतीकरण के अंतर्गत महिला लेखिका जब अपने जीवन के अनछुए पहलुओं का उद्घाटन करती है तो समाज जाने अनजाने उन्हीं आत्म सत्यों को नकार देता है। इसके बावजूद स्त्री आत्मकथा के माध्यम से स्त्री लेखिकाओं ने आत्माभिव्यक्ति सशक्त रूप में की है, साहित्यालोचन की बँधी-बँधाई परिपाटी को चुनौती दी है। स्त्रियाँ आत्मकथा जैसी विधा में ‘अन्या’ की भूमिका त्यागकर मुख्य भूमिका में प्रकट होती हैं। इस प्रक्रिया में वे व्यक्ति यथार्थ की खोज में सामाजिक यथार्थ तक पहुँचने का प्रयास करती हैं।

दलित आत्मकथा में स्वानुभूति का आधार उन्हें उनके सामाजिक यथार्थ के प्रस्तुतकर्ता की प्रमाणिकता उपलब्ध करता है। समाज में भेदभाव, जातिगत शोषण, अपमान से रोज-रोज का साक्षातीकरण एक ओर उनका भोगा हुआ, स्वानुभूतिपरक व्यक्ति यथार्थ है, तो दूसरी ओर उनके चतुर्दिक विद्यमान सामाजिक यथार्थ भी है। दलित आत्मकथा का नायक अपने आप को विशिष्ट आत्म की खोज में असफल पाता है क्योंकि उसकी पहचान उसके विशिष्ट आत्म के कारण नहीं बल्कि समाज की ऐसी इकाई के रूप में होती है जहाँ वह एक दलित जाति वाला व्यक्ति चिह्नित किया जाता है। जाहिर बात है कि इस दशा में आत्मकथा में ‘आत्म’ की कथा नहीं बल्कि व्यक्ति की और व्यक्ति के समाज को प्रमुखता मिलेगी।

स्त्री आत्मकथा के संदर्भ में स्वानुभूति बनाम सहानुभूति की बहस देखी जा सकती है। स्त्री की आत्मकथा में अभिव्यक्त स्वानुभूति की तुलना सहानुभूति से करना सही नहीं है। समाज की संरचना कुछ

इस प्रकार बनी है या बनायी गयी है जहाँ- नैतिकता, कामभावना, लिंग, लैंगिकता जैसे सरोकार स्त्री के खाते में जाते हैं। सारे नियम उसे ही नियंत्रित करने के लिए बनाये गये हैं, उस सूरत में स्त्री का व्यक्ति यथार्थ किसी अन्य की सहानुभूति के दायरे में नहीं सिमट सकता। स्त्री के लिए समाज द्वारा निर्धारित कसौटियों, दायित्वों, भूमिकाओं का दबाव इतना ज्यादा है कि स्त्री उस दबाव में अपने आत्म का विकास अवरुद्ध पाती है। उसे स्वयं के भीतर कोई क्षमता, सामर्थ्य नहीं दिखाई देती जो विशिष्ट हो और जब दिखाई देती है तो वह आत्मकथा के साथ समाज में समाज को आईना दिखाने निकल पड़ती हैं। यह आत्मकथा व्यक्ति यथार्थ के द्वारा सामाजिक यथार्थ की बानगी बनती है जो स्त्री विमर्श के दायरे में प्रतिरोध की तरह कुछ इस तरह प्रतिक्रिया करती है जिसके परिणामस्वरूप दो मुँह, पक्षपाती नैतिक पाखण्ड को चुनौती दी जा सके।

स्त्री आत्मकथाओं के माध्यम से महिलाएँ प्रायः स्त्री-मन के उस संसार को, उसके यथार्थ को सामने लाने का प्रयास करती हैं जहाँ उसके तमाम समर्पण, ममता, प्रेम, त्याग के बावजूद भी उसे वह सम्मान और समता नहीं मिल पाती। इसके अतिरिक्त स्त्री मन की अन्तर्गुम्फित परतें भी दिखाई दे जाती हैं जहाँ पर पुरुषवादी और अहं से घिरी सोच नहीं पहुँच पाती। इन आत्मकथाओं में स्त्री की वह दुनिया है जहाँ प्रसंग, विवरण, वृत्तान्त अपनी छोटी-छोटी संवेदनाओं के कारण विशिष्ट है, जहाँ मानवीय सम्बन्ध प्रायः उपेक्षणीय समझे जाने के बावजूद भावपूर्ण हैं। यह सब सामाजिक नैतिकता से बचता-बचाता, कई-कई सवाल से जूझता, उनके जवाब खोजता कुछ इस तरह बयान होता है जहाँ घर, परिवार, व्यक्तिगत संसार की बातें भी सामाजिक यथार्थ के प्रस्तुतीकरण की सृजनात्मक क्षमता से लैस है।

स्त्री आत्मकथाओं में एक ओर नायिका स्त्री है तो दूसरी ओर प्रति नायक (खलनायक) की भूमिका में शोषणकारी, नैतिकता निर्धारण करने वाला वह पितृसत्तात्मक समाज और उसकी सोच है। परम्परागत दाम्पत्य वाली महिलाओं और क्रान्तिकारी दाम्पत्य वाली महिलाओं की आत्मकथा में पुरुष सत्ता और उसकी भूमिका एक समान नहीं है। तात्पर्य यह है कि मानव-जीवन में लैंगिक व्यवहार के भिन्न प्रारूप आत्मकथाओं में देखे जा सकते हैं। जो महिलाएँ विवाह की अनिच्छुक थीं उनकी आत्मकथा दाम्पत्य त्रासदी के रूप में सामने आयी है, क्योंकि इनके द्वारा परम्परागत रूप से पुरुष आधीनता या पितृसत्तात्मक सोच की आधीनता स्वीकार नहीं की गयी। मन्नू भण्डारी की आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' और प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' इसी कोटि की आत्मकथाएँ हैं। इसमें दोनों लेखिकाओं द्वारा एक सीमा तक ही 'बाई-पास' दाम्पत्य की स्वीकृति दी गयी।

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की आत्मकथा 'पिंजरे की मैना' तथा मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया' परम्परागत दाम्पत्य की स्त्री कथा को बयान करती है। जहाँ स्त्री का मुख्य कर्तव्य पति, परिवार, और जाति के सम्मान के लिए जीवन पर्यन्त अपने कौमार्य, चारित्रिक शुद्धता और पवित्रता की रक्षा करना है। यौन शुचिता, सच्चाई, ईमानदारी आदि अनेक नैतिक मूल्यों का सम्बन्ध स्त्री से ही है। ये सभी शब्द और उसके मायने स्त्री को नियंत्रित करते हैं, उस पर शासन करते हैं और ऐसा इसलिए संभव है क्योंकि स्त्रियों को बचपन से ही इन शब्दों का अर्थ और इन अर्थों में उनकी सीमाएँ सिखायी जाती हैं।

स्त्री आत्मकथा में पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह, कर्तव्य भावना से भरा जीवन का उथल-पुथल, राग-द्वेष आदि सहज रूप से दृष्टव्य है। वहाँ बेवफा पति के लिए ममत्व और करुणा भी दिखाई देती है। इन आत्मकथाओं से यह बात भी उभरकर सामने आती है कि परिवार जीवन की एक अपरिहार्य मूलभूत संस्था है, वह अपने सदस्यों के अस्तित्व के लिए प्रेम के साथ या प्रेम के बिना भी समर्पण और निष्ठा की अपेक्षा करती है। परिवार को बचाने के पक्ष में दाम्पत्य सम्बन्धों में स्वैच्छिक यातना के वरण के प्रसंग स्त्री आत्मकथा में काफी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

कुछ स्त्री आत्मकथाएँ व्यक्ति यथार्थ से सामाजिक यथार्थ की ओर बढ़ते हुए नारी अस्मिता के दायरे को पार कर जाती हैं। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में स्त्री का संघर्ष स्त्री और दलित होने के कारण दोहरा है। दलित के रूप में जाति व्यवस्था का दंश, स्त्री के रूप में लैंगिक विभेद का दंश। लेखिका ने अपमान, तिरस्कार और उपेक्षा के विकासत्मक आयामों का चित्रण करने के लिए अपनी तीन पीढ़ियों को वर्ण्य विषय बनाया है। एक स्त्री के रूप में वे कहती है कि नारी किसी भी जाति धर्म की हो, वह कष्टों से घिरी रहती है। घर में प्रताड़ना झेलती सुशीला टाकभौरे ने एक दिन अपनी पड़ोसन को भिखारी से कहते सुना और देखा कि महाराज, उस घर से भिक्षा मत लेना वहाँ जमादारिन रहती है। इस तरह की दोहरी पीड़ा मन्नू भण्डारी, प्रभा खेतान या मैत्रेयी पुष्पा को नहीं झेलनी पड़ी होगी।

प्रभा खेतान की आत्मकथा उस कठिनाई का बयान करती है जहाँ पुरुष प्रधान समाज स्त्री को स्त्री होने के कारण उसे उसके तरीकों उसकी शर्तों के आधार पर जीने नहीं देता। यह आत्मकथा यह भी बयान करती है कि भारतीय समाज में स्त्री सिर्फ पुरुषों के बीच उत्पीड़न का शिकार नहीं है बल्कि स्त्रियों के बीच भी उत्पीड़न का शिकार है क्योंकि पितृसत्तात्मक सोच के लिए स्त्री या पुरुष होना आवश्यक नहीं। यही भारतीय नारीवाद का सामाजिक यथार्थ है।

इस प्रकार ये आत्मकथाएँ भारतीय सामाजिक संरचना में व्याप्त उस लैंगिक भेद का पटाक्षेप करती हैं, जिसकी जड़ों का सम्बन्ध पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था से है। अधिकांश रचनाकार उच्च या मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं, उनका शैक्षिक स्तर उच्च है लेकिन उन्हें भी उसी लैंगिक भेद का शिकार होना पड़ा है। जिसे सामान्य भारतीय नारी रोजमर्रा झेलती है। लेखिकाएँ जब इस शोषण और विभेदीकरण को समझती हैं या समझने लायक होती हैं तब उनका मस्तिष्क पर्याप्त विकसित हो चुका होता है और यह दिल दिमाग अनुभव सम्पन्न, शान्त, स्वयं-परिवार-सामाजिक संबंधों को समझकर, उन्हें आत्मकथा सृजन के आवश्यक समाज से संघर्ष करने वाली ऊर्जा प्रदान करता है ताकि वे व्यक्ति यथार्थ के प्रस्तुतीकरण के क्रम में सामाजिक यथार्थ के अनपेक्षित पहलुओं को बाहर लाकर पाठक को सचेत कर सकें। यह रचनात्मकता दलित और स्त्री के जीवन से उपजी है। एक ओर दलित आत्मकथाओं ने तो दूसरी ओर स्त्री आत्मकथाओं ने आत्मकथा विधा के अनेक मिथक तोड़े हैं। जीवन की यातना का सच लिखना इनके लिए एक ओर साहसिक है तो दूसरी ओर समाज को राह दिखाकर उसे प्रगतिशील बनाना, समतावादी बनाने का अन्तिम प्रयास भी।

अधिकांशतः एक गैर-दलित पुरुष की आत्मकथा उसके सफल, उज्वल और आशावादी आत्म की कथा है, परन्तु क्या दलित और स्त्री की आत्मकथा में आत्म का यही रूप प्रस्तुत होता है? दरअसल गैर दलित पुरुष की आत्मकथा में उसकी असफलता कम और सफलता की अधिक बयानगी होती है जबकि एक दलित या स्त्री की आत्मकथा उसकी दोयम स्थिति का बयान करती हुई उसकी असफलता की ही कहानी होती है- "स्त्री की हर आत्मकथा अपनी यातनाओं की ऐसी निजी दास्तान है, जो घर-घर में घटित होती है। पुरुषों की आत्मकथाएँ उनके निजी संघर्षों की विजय गाथाएँ हैं। विपरीत और विषम स्थितियों से लड़ता हुआ पुरुष अपना अद्वितीय व्यक्तित्व गढ़ता है, वह किसी दूसरे व्यक्ति की कहानी नहीं हो सकती। स्त्री की आत्मकथा समाज और परिवार की उन भीतरी सच्चाइयों से साक्षात्कार है, जिनकी चुभन जूते की कील की तरह सिर्फ पहनने वाला ही जानता है।"<sup>9</sup>

### संदर्भ :

1. हिन्दी आत्मकथाएँ सिद्धान्त एवं स्वरूप विश्लेषण- विनीता अग्रवाल, पृष्ठ 384, सचिन प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 1989 ई।
2. क्या भूलूँ क्या याद करूँ (भाग 1)- हरिवंश राय बच्चन, पृष्ठ 168, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2010
3. आत्मा का आईना- मैनेजर पाण्डेय, हंस, मार्च 2010, पृष्ठ 52

4. हिन्दी का आत्मकथा साहित्य- डॉ. विश्वबंधु शास्त्री, पृष्ठ 40, राधा प्रकाशन, सीताराम बाजार, नई दिल्ली, संस्करण 1989 ई।
5. आत्मकथाएं : सबके अपने-अपने सत्य- रमणिका गुप्ता, पृष्ठ 3, युद्धरत आम आदमी, जनवरी-मार्च 2012
6. आत्मकथाएं : सबके अपने-अपने सत्य- रमणिका गुप्ता, पृष्ठ 3, युद्धरत आम आदमी, जनवरी-मार्च 2012
7. दोहरा अभिशाप- कौशल्या बैसन्ती, भूमिका से
8. वही, भूमिका से
9. हंस- राजेन्द्र यादव, पृष्ठ 6, जनवरी 2005